संसद की अपंगता

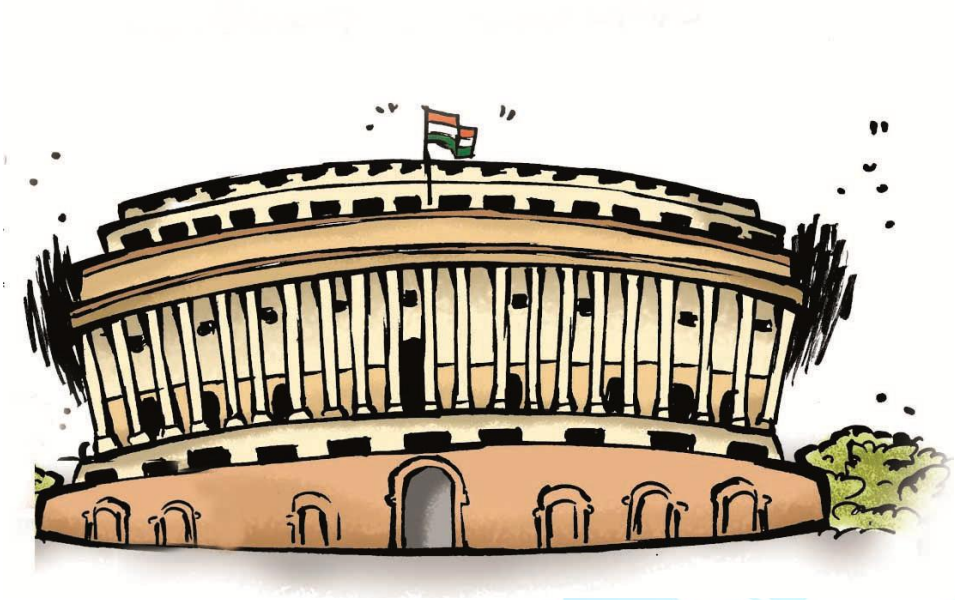

पिछले कुछ दिनों में लोकतंत्र का आधार कही जाने वाली संसद ने मात्र 5 घंटे ही काम किया है। संसद में उठने वाले विपक्ष के शोर-शराबे के बीच केन्द्रीय बजट को बिना यह देखे पारित कर दिया कि करदाताओं की मेहनत का धन सही जगह लगाया जा रहा है या नहीं। इसी आपाधापी में सांसदों के वेतन में बढ़ोत्तरी की प्रक्रिया भी आगे बढ़ा दी गई। विदेशी सहायता विनियमन कानून के तहत देश की तीन प्रमुख पार्टियों को 16 मई तक ब्योरा देने की छूट दे दी गई है। इस कानून में संसद से कुछ सुधार की उम्मीद की गई थी, जिस पर पानी फेर दिया गया। संसद के इस रवैये ने उसकी प्रासंगिकता पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है।

- संसद की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाने का पहला कारण सरकार और विरोधी दल के कटु होते संबंध हैं। एक ओर, सरकार अपने पूर्ण बहुमत को लेकर घमंड में है। वह विरोधी दल के प्रति सहिष्णु नहीं है। अपने विरोधियों को कुचलने को तैयार बैठी है। दूसरी ओर, विपक्षी दल उग्र रवैया अपनाए हुए है। वह सत्ता पक्ष पर अभियोग लगाने को ही अपना एक मात्र ध्येय मानता है। बैर भाव इस हद तक बढ़ गया है कि कांग्रेस अधिवेशन में राहुल गांधी ने प्रधानमंत्री मोदी को भ्रष्टाचार का पर्याय ही बता दिया। संसद की राजनीति में अभियोग जब व्यक्तिगत स्तर पर पहुँच जाते हैं, तो सदन में एकजुट होकर कार्य करना दूभर हो जाता है। वहाँ सर्वदलीय बैठकों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

प्रधानमंत्री नेहरु संसद की बैठकों में सदैव उपस्थित रहा करते थे। परन्तु आज हमारे प्रधानमंत्री के लिए यह गैर-जरूरी हो चुका है। विपक्षी दल के नेता राहुल गांधी भी चुनाव प्रचार में ही लगे रहते हैं। संसद में बहस की कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है।

- संसद में क्षेत्रवाद का बोलबाला होने लगा है। राज्यों में चल रही मांगों के लिए संसद की कार्यवाही में अवरोध पैदा किए जा रहे हैं। चाहे आंध्र को विशेष दर्जा देने का मामला हो या कावेरी जल के हिस्से की लड़ाई हो, राज्य से जुड़े अनेक मुद्दों के लिए संसद के कामकाज को प्रभावित करना उचित नहीं कहा जा सकता।
- वर्तमान में चुने जाने वाले सांसदों के संसद में किए जाने वाले प्रदर्शन को आधार बनाए जाने का सिद्धांत ही खत्म हो गया है। पीलू मोदी, नाथ पई तथा जार्ज फर्नांडिस आदि ऐसे नेता रहे हैं, जिन्होंने अपने संसदीय कौशल के बल पर जनता के बीच स्थान बनाया और चुनाव जीता।

  आज के समय में धर्म, जाति और धन शक्ति ही चुनाव जीतने का आधार बने हुए हैं।
- संसद में प्रतिनिधि के रूप में आए सांसदों का कहना है कि क्षेत्र की जनता उनसे राष्ट्रीय मुद्दों में भाग लेने की जगह स्थानीय मुद्दों पर ध्यान देने की अधिक अपेक्षा रखती है। उन्हें ऐसा महसूस होता है कि वे निगम पार्षद या जिला परिषद् के प्रमुख से अधिक कुछ नहीं हैं। उनका ध्यान अधिकतर क्षेत्र की समस्याओं तक ही सीमित रहने लगा है। अब सांसदों को इन्हीं समस्याओं को सुलझाने की क्षमता के आधार पर योग्य या अयोग्य ठहराया जाने लगा है।

आज संसद की स्थिति दयनीय है। वह रूग्ण हो चुकी है। जनता की स्थिति अस्पताल के प्रतीक्षालय में इंतजार करते मरीज के परिजनों जैसी बनी हुई है। जनता और शासकों के बीच की यह दूरी घातक है।

'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित सागारिका घोष के लेख पर आधारित।